विश्व प्रसिद्ध कहानीकार अंतोन चेखव की कहानी - बैरी

For English version please scroll down

सितम्बर की एक अँधेरी रात, नौ बजे के थोड़ी देर बाद डॉक्टर किरीलोव का इकलौता छह वर्षीय पुत्र आन्द्रेई डिप्थीरिया से मर गया। डॉक्टर की पत्नी गहरे शोक व निराशा के पहले दौर में बच्चे के पलंग के पास घुटनों के बल बैठी ही थी जब दरवाज़े की घण्टी कर्कश स्वर में खनखना उठी।

डिप्थीरिया की छूत के कारण घर के नौकर सबेरे ही घर से बाहर भेज दिये गये थे। किरीलोव, जैसा था वैसे ही, सिर्फ़ क़मीज़ पहने वास्कट के बटन खोले, अपना गीला चेहरा और कारबोलिक से झुलसे हाथ पोंछे बिना, दरवाज़ा खोलने चल दिया। ड्योढ़ी में अँधेरा था और डॉक्टर आगन्तुक का जो कुछ देख पाया वह था औसत क़द, सफ़ेद गुलूबन्द, बड़ा और इतना पीला पड़ा चेहरा कि लगता था कि कमरे में उससे रोशनी आ गयी हो...

"क्या डॉक्टर घर पर है?" आगन्तुक ने जल्दी से पूछा।

"हाँ, मैं घर पर ही हूँ," किरीलोव ने जवाब दिया, "आप क्या चाहते हैं?"

"ओह! आपसे मिलकर ख़ुशी हुई!" उस व्यक्ति ने प्रसन्न होकर अँधेरे में डॉक्टर का हाथ टटोलते हुए और उसे पाने पर अपने दोनों हाथों से ज़ोर से दबाकर कहा - "बहुत... बहुत ख़ुशी हुई! हम पहले मिल चुके हैं। मेरा नाम अबोगिन... गर्मियों में ग्नुचेव परिवार में आपसे मिलने का सौभाग्य हुआ था। आपको घर पर पाकर मुझे बहुत ख़ुशी हुई... ईश्वर के लिए कृपा करके फ़ौरन मेरे साथ चलें... मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ... मेरी पत्नी बहुत सख़्त बीमार पड़ी है... मैं गाड़ी लाया हूँ..."

आगन्तुक के हाव-भाव और आवाज़ से लग रहा था कि वह बहुत घबराया हुआ है। उसकी साँस तेज़ी से चल रही थी और वह तेज़ी से काँपती हुई आवाज़ में बोल रहा था, मानो वह कहीं किसी पागल कुत्ते या आग से बचकर भागता आ रहा हो, और उसकी बात में साफ़दिली और बच्चों जैसे सहमेपन का पुट था। वह छोटे अधपूरे

जुमले बोल रहा था, जैसा कि आशंकित और अभिभूत लोग करते हैं और बहुत-सी ऐसी फ़ालतू बातें कह रहा था जिनका मामले से कोई सम्बन्ध नहीं था।

“मुझे डर था कि आप घर पर न मिलेंगे,” उसने कहना जारी रखा। “यहाँ आने तक, सारे रास्ते-भर में यन्त्रणा और व्यथा से घिरा रहा...ईश्वर के लिए, आप अपना कोट पहन लें और चलें...यह सब हुआ इस तरह कि पापचिंस्की - आप उसे जानते हैं, अलेक्सान्द्र सेम्योनिविच पापचिंस्की मुझसे मिलने आया। थोड़ी देर हम लोग बैठे बातें करते रहे...फिर मेज़ पर जमकर चाय पी। यकायक मेरी पत्नी चीख़ी और दिल पर हाथ रखकर कुर्सी पर पसर गयी। हम लोग उसे उठाकर पलंग पर ले गये और...मैंने उनकी कनपटियों पर अमोनिया मला और उसके मुँह पर पानी छिड़का...पर वह बिल्कुल स्तब्ध पड़ी रही, बिल्कुल मरी-सी... मुझे डर है कहीं उसका दिल बढ़ न गया हो... आप चलें... उसके पिता की मौत दिल के बढ़ जाने से हुई थी...”

किरीलोव चुपचाप सुनता रहा मानो वह रूसी भाषा ही न समझता हो।

जब अबोगिन ने फिर पापचिंस्की और अपनी पत्नी के पिता का ज़िक्र किया और अँधेरे में फिर उसका हाथ ढूँढ़ना शुरू किया, तब उसने सिर उठाया और उदासीन भाव से हर शब्द को लम्बा खींचते हुए कहा:

“मुझे खेद है कि मैं आपके घर नहीं जा सकूँगा... पाँच मिनट पहले मेरा लड़का... मर गया...”

“अरे, नहीं!” पीछे को हटते हुए अबोगिन फुसफुसाया। “हे ईश्वर, मैं किस ग़लत मौक़े पर आया! कैसा अभागा दिन है यह... वाक़ई यह कैसी अजब बात है! कैसा संयोग है यह... कौन सोचता था!”

उसने दरवाज़े का हत्था पकड़ लिया, उसका सिर झुका हुआ था, मानो चिन्तामग्न हो। स्पष्टतः वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह लौट जाये या डॉक्टर की आरज़ू-मिन्नत जारी रखे।

किरीलोव की बाँह पकड़ वह लालसा से बोला:

“मैं आपकी हालत बख़ूबी समझता हूँ! ईश्वर जानता है कि मैं ऐसे वक़्त आपका ध्यान आकृष्ट करने की कोशिश करने के लिए कितना शर्मिन्दा हूँ, पर मैं क्या करूँ? आप ही सोचें, मैं कहाँ जाऊँ? इस जगह आपके सिवा और कोई डॉक्टर नहीं है। आप चलें, ईश्वर के लिए चलें! मैं अपने लिए अनुनय नहीं कर रहा... बीमार मैं नहीं हूँ!”

ख़ामोशी छा गयी। किरीलोव अबोगिन की ओर पीठ फेरकर एक-दो मिनट चुपचाप खड़ा रहा और फिर ड्योढ़ी से धीरे-धीरे बैठक में चला गया। उसकी अनिश्चित यन्त्रवत चाल, बैठक में अनजले लैम्प-शेड की झालर सीधी करने और मेज़ पर पड़ी एक मोटी किताब के पन्ने पलटने के खोये-खोये ढंग से लग रहा था कि उस समय न उसकी कोई इच्छा थी, न इरादा था, न वह कुछ सोच रहा था। वह शायद बिल्कुल भूल गया था कि बाहर ड्योढ़ी में कोई अजनबी भी खड़ा है। कमरे के सन्नाटे और धुँध में उसकी विमूढ़ता बढ़ती लगती थी। बैठक से अपने कक्ष की ओर बढ़ते हुए उसने अपना दाहिना पैर ज़रूरत से ज़्यादा ऊँचा उठा लिया और फिर दरवाज़े की चौखट टटोलने लगा; उसकी पूरी आकृति से एक तरह का भौचक्कापन प्रकट हो रहा था, मानो वह किसी अनजाने मकान में चला आया हो या ज़िन्दगी में पहली बार नशा कर लिया हो और अब नशे में विमूढ़ हो गयी तरंग में बह रहा हो। रोशनी की एक चौड़ी पट्टी कक्ष की एक दीवार व किताबों की अलमारियों पर पड़ रही थी। यह रोशनी कारबोलिक व ईथर की तीखी व भारी गन्ध के साथ सोने वाले कमरे से आ रही थी, जिसका दरवाज़ा ज़रा-सा खुला हुआ था...डॉक्टर मेज़ के पास वाली कुर्सी में धँस गया। थोड़ी देर वह रोशनी में पड़ी किताबों की ओर उनींदा-सा घूरता रहा, फिर उठकर सोने वाले कमरे में चला गया।

यहाँ, सोने वाले कमरे में मौत का-सा सन्नाटा था। यहाँ की छोटी से छोटी चीज़ भी उस तूफ़ान का सबूत दे रही थी जो बिल्कुल हॉल में आया था और अब थककर चूर हो गया था। यहाँ पूर्ण विश्रान्ति थी। बोतलों, बक्सों व मर्तबानों से भरी तिपाई पर एक मोमबत्ती और अलमारी पर रखा एक बड़ा लैम्प पूरे कमरे को रोशन कर रहे थे। खिड़की के ठीक पास पलंग पर एक बालक लेटा था जिसकी आँखें खुली थीं और चेहरे पर आश्चर्य का भाव था। वह बिल्कुल हिल-डुल नहीं रहा था पर उसकी खुली आँखें क्षण-क्षण काली पड़ती और माथे में गहरी धँसती जा रही लगती थीं। उसके शरीर पर हाथ रखे, बिस्तर में मुँह छिपाये माँ पलंग के पास झुकी बैठी थी। बच्चे

की तरह वह भी निश्चल थी, पर उसके शरीर की गोलाइयों और भुजाओं में कैसी गति छिपी थी! पलंग से वह पूरी तरह से चिपटी हुई थी, सारे शरीर को उससे इस शक्ति व उत्सुकता के साथ दबाये हुए थी मानो थकान भरे शरीर ने जो शान्त तथा विश्राममय मुद्रा अन्ततः धारण कर ली थी, उसमें व्याघात पहुँचाने से वह डर रही हो। कम्बल, कपड़े के टुकड़े, चिलमची, फ़र्श पर पानी, इधर-उधर बिखरे ब्रश और चम्मच, चूने के पानी की सफ़ेद बोतल, घुटी-घुटी भारी हवा तक - सभी चीज़ें गम्भीर शान्ति में लय, विश्राम करती लग रही थीं।

डॉक्टर अपनी पत्नी की बग़ल में आ खड़ा हुआ, पतलून की जेबों में हाथ डालकर और सिर एक ओर झुकाकर वह अपने बेटे की ओर ताकने लगा। उसके चेहरे से उदासीनता टपक रही थी और सिर्फ़ दाढ़ी पर चमक रही बूँदें ही इस बात का पता दे रही थीं कि वह अभी रोया है।

सोने के कमरे में मृत्यु के विचार से सम्बद्ध भयानकता और वीभत्सता का सर्वथा अभाव था। वहाँ छायी हुई निस्तब्धता, माँ की मुद्रा, पिता की आकृति पर अंकित उदासीनता के भाव में कुछ बड़ी आकर्षक, मर्मस्पर्शी, मानव शोक की वह बड़ी सूक्ष्म अदृश्य सुन्दरता थी जिसे समझना और वर्णन करना लोग जल्दी नहीं सीखेंगे, जो सम्भवतः केवल संगीत द्वारा ही अभिव्यक्त की जा सकती है। और उस उदास निस्तब्धता में भी सौन्दर्य था। किरीलोव और उसकी पत्नी ने कुछ नहीं कहा, वे रोये नहीं मानो दुख की गुरुता के साथ ही उन्हें उस स्थिति के कवित्व का भी आभास हो रहा हो। जैसे अपने समय से उनका यौवन विदा हुआ था वैसे ही इस बालक के साथ उनका सन्तान पाने का अधिकार भी विदा ले गया था। डॉक्टर की उम्र चवालीस वर्ष की थी, उसके बाल अभी से सफ़ेद हो गये थे और बूढ़ा लगता था। उसकी रुग्ण, मुरझायी हुई पत्नी पैंतीस वर्ष की थी। आन्द्रेई उनका एकमात्र ही नहीं, अन्तिम सन्तान भी था।

अपनी पत्नी के विपरीत, डॉक्टर उस स्वभाव के व्यक्तियों में से था जो मानसिक कष्ट के समय कुछ कर डालने की आवश्यकता अनुभव करते हैं। पत्नी के पास कुछ मिनट खड़े रहने के बाद वह सोने के कमरे से निकल आया, उसी तरह दाहिना पैर ज़रूरत से ज़्यादा उठाते हुए, और एक छोटे से कमरे में गया जो एक सोफ़े से ही

आधा-भर गया था। वहाँ से वह रसोई में गया। अलावघर और रसोइये के पलंग के पास टहलते हुए वह झुककर एक छोटे दरवाज़े से होकर ड्योढ़ी में निकल आया।

यहाँ उसकी सफ़ेद गुलूबन्द और फीके पड़े चेहरे वाले व्यक्ति से फिर मुठभेड़ हो गयी।

“आख़िरकार!” दरवाज़े के हत्थे पर हाथ रखते हुए अबोगिन ने लम्बी साँस लेकर कहा - “चलिये, मेहरबानी करके चलिये!”

डॉक्टर चौंक पड़ा, उसकी ओर देखा और उसे याद आ गया...

“लेकिन मैंने आपसे कह दिया था कि मैं जा न सकूँगा!” यकायक फिर इस दुनिया में लौटते हुए उसने कहा, “कैसी अजब बात है...”

अपने गुलूबन्द पर हाथ रखते हुए और मिन्नत भरी आवाज़ में अबोगिन बोला - “डॉक्टर! मैं पत्थर की मूरत नहीं हूँ, मैं आपकी हालत अच्छी तरह समझता हूँ... मुझे आपसे सहानुभूति है। पर मैं आपसे अपने लिए अनुनय-विनय नहीं कर रहा हूँ। मेरी पत्नी मर रही है! यदि आपने उसकी वह चीख़ सुनी होती, उसका वह चेहरा देखा होता, तो आप मेरे हठपूर्ण अनुरोध को समझ सकते! हे भगवान, और मैं सोच रहा था कि आप कपड़े पहनने गये हैं। डॉक्टर, वक़्त बहुत क़ीमती है! आप चलें, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ!”

बैठक की ओर बढ़ते हुए डॉक्टर ने एक-एक शब्द का स्पष्ट उच्चारण करते हुए कहा - “मैं आपके साथ नहीं जा सकता!”

अबोगिन उसके पीछे-पीछे गया और उसकी बाँह पकड़ ली।

“आप बहुत दुखी हैं, मैं समझ रहा हूँ, पर मामूली दाँत के दर्द के इलाज या किसी बीमारी के लक्षण पूछने-भर के लिए तो मैं आपसे चलने का अनुरोध कर नहीं रहा,” वह याचना भरे स्वर में बोला। “मैं एक इंसान की ज़िन्दगी बचाने के लिए कह रहा हूँ, यह ज़िन्दगी व्यक्तिगत शोक के ऊपर है! अब आप चलें, मानवता के नाम पर मैं आपसे धैर्य और वीरता दिखाने को कह रहा हूँ!”

“मानवता - वह तो दुधारी तलवार है,” किरीलोव ने झुँझलाकर कहा, “इसी मानवता के नाम पर मैं आपसे कहता हूँ कि मुझे न ले जाइये। अजब बात है, सचमुच! यहाँ मेरे लिए खड़ा होना दुभर हो रहा है और आप हैं कि मुझे ‘मानवता’ शब्द की धमकी दे रहे हैं। इस वक़्त मैं कोई काम करने के क़ाबिल नहीं हूँ...किसी तरह भी मैं जाने को राजी नहीं हो सकता; और फिर यहाँ कोई है भी नहीं, जिसे मैं अपनी बीवी के पास छोड़ जाऊँ। नहीं, नहीं...”

किरीलोव एक क़दम पीछे हट गया और हाथ हिलाते हुए इन्कार करने लगा।

“आप मुझे जाने को न कहें,” फिर एकदम घबराकर बोला, “मुझे माफ़ करें...आचरण संहिता के तेरहवें खण्ड के अनुसार मैं आपके साथ जाने को बाध्य हूँ, और आपको अख़्तियार है कि मेरे कोट का गला पकड़कर मुझे घसीट ले जायें...अच्छी बात है, आप यही करें, पर...मैं कोई भी काम करने के क़ाबिल नहीं हूँ...मैं बोल भी नहीं सकता...मुझे माफ़ करें...”

“डॉक्टर, आप ऐसा न करें,” उसकी बाँह से चिपके-चिपके ही अबोगिन ने कहा। “मुझे तेरहवें खण्ड से क्या लेना-देना? आपकी इच्छा के विरुद्ध चलने के लिए आपको मजबूर करने का मुझे कोई हक़ नहीं। अगर आप चलने को राजी हैं, तो ठीक; अगर नहीं तो मजबूरी है, मेरी अपील आपके दिल से है। एक युवती मर रही है! आप कहते हैं कि आपका बेटा अभी मरा है - तब तो औरों से ज़्यादा आपको मेरी वेदना समझनी चाहिए।”

घबराहट से अबोगिन की आवाज़ काँप रही थी। उसकी आवाज़ की कँपकँपी और लहज़े में शब्दों की अपेक्षा मनाने की अधिक शक्ति थी। अबोगिन के शब्दों में सच्चाई थी लेकिन उल्लेखनीय बात यह थी कि उसके सब जुमले ऐंठे, रूखे, ग़ैरज़रूरी तड़क-भड़क वाले और डॉक्टर के घर के वातावरण व कहीं दूर मरती हुई महिला दोनों के लिए खटकने वाले अनादर से भरे मालूम पड़ते थे। उसे ख़ुद भी यही लग रहा था और इस डर से कि कहीं उसकी बात समझी न जा सके, अपनी आवाज़ को नम्र और अनुनयभरी बनाने की भरसक चेष्टा कर रहा था ताकि यदि शब्दों से काम न चले तो आवाज़ की साफ़दिली ही उसका उद्देश्य पूरा कर दे। यह कहा जा सकता है कि शब्द और वाक्य चाहे कितने सुन्दर व सारगर्भित क्यों न हों, केवल उन्हीं को प्रभावित कर पाते हैं जो उदासीन हैं, जो प्रसन्न या शोकाकुल हैं उन्हें नहीं। इसीलिए सुख और

दुख की चरम अभिव्यक्ति बहुधा मौन में होती है। प्रेमी जब मूक होते हैं तभी एक-दूसरे को ज़्यादा अच्छी तरह समझते हैं और क़ब्र पर दिये गये ओजस्वी भाषण बाहर वालों का ही हृदय स्पर्श कर पाते हैं, मृतक के बच्चों व विधवा को वह निष्प्रेम व तुच्छ ही लगते हैं।

किरीलोव चुपचाप खड़ा रहा। अबोगिन फिर डॉक्टरी के पेशे व उसके त्याग तपस्या आदि के सम्बन्ध में बोला। डॉक्टर ने रुखाई के साथ पूछा:

“क्या बहुत दूर जाना होगा?”

“बस यही तेरह या चौदह मील। मेरे घोड़े बहुत बढ़िया हैं, डॉक्टर! ईमान की क़सम, वे घण्टे-भर में आपको वापस पहुँचा देंगे, सिर्फ़ एक घण्टे में!”

डॉक्टर पर डॉक्टरी के पेशे और मानवता के सम्बन्ध में कहे गये जुमलों से ज़्यादा असर इन आख़िरी शब्दों का पड़ा। एक क्षण सोचने के बाद उसने उसास भरकर कहा:

“अच्छा! चलो चलें!”

वह तेज़ी से कक्ष में घुसा। अब उसकी चाल स्थिर थी; क्षण-भर में ही वह फ्रॉक कोट डालकर वापस लौट आया। अबोगिन छोटे-छोटे डग भरते हुए उसकी बग़ल चलने लगा और कोट पहनने में उसकी मदद करने लगा, फिर दोनों साथ-साथ घर से बाहर निकले।

बाहर अँधेरा था, पर इतना गहरा नहीं जितना भीतर ड्योढ़ी में था। लम्बे, झुके हुए, लम्बी टेढ़ी नाक और लम्बी नुकीली दाढ़ी वाले डॉक्टर की आकृति अँधेरे की पृष्ठभूमि में भी साकार थी। मुरझाये हुए चेहरे वाले अबोगिन का बड़ा सिर भी जिस पर छात्रों वाली छोटी टोपी लगी थी और जो मुश्किल से उसकी चँदिया ढँक रही थी, दिखायी दे रहा था। गुलूबन्द सिर्फ़ सामने ही सफ़ेद चमक रहा था, पीछे वह उसके लम्बे बालों से ढँका हुआ था।

“आप यक़ीन माने आपकी उदारता की क़द्र करना मैं जानता हूँ।” गाड़ी में डॉक्टर को बैठाते हुए वह बुदबुदाया, “हम लोग वहाँ अभी पहुँचते हैं। लुका, प्यारे! तुम जितनी तेज़ी से हाँक सकते हो, हाँको! मेहरबानी करके, हाँको!”

कोचवान ने घोड़े दौड़ा दिये। पहले इन लोगों को अस्पताल के अहाते की बदनुमा इमारतों की क़तार मिली। इमारतें अँधेरे में थीं, सिर्फ़ अहाते की बिल्कुल कोने वाली इमारत के सामने बग़ीचे में खिड़की से तेज़ रोशनी आ रही थी और अस्पताल की इमारत की ऊपर की मंज़िल की तीन खिड़कियों के शीशे आसपास से ज़्यादा पीले लग रहे थे। अब गाड़ी बिल्कुल अन्धकार में चल रही थी; कुकुरमुत्तों की भीगी गन्ध आ रही थी और पत्तियों की सरसराहट सुनायी पड़ रही थी। पहियों की आवाज़ से जागे कौए शाखों से चौंककर शोकाकुल आवाज़ में काँव-काँव कर उठते मानो उन्हें पता हो कि डॉक्टर का लड़का मर गया है और अबोगिन की बीवी बीमार है। पर जल्दी ही पेड़ों की क़तारें ख़त्म हो गयीं और इक्का-दुक्का पेड़ और फिर झाड़ियाँ सपाटे से गुज़रने लगीं। एक पोखरा जिसकी सतह पर बड़ी-बड़ी काली परछाईंयाँ पड़ रही थीं, उदासी से झिलमिला रहा था; गाड़ी खुले मैदान में खड़खड़ाती जा रही थी। कौवों की काँव-काँव खोखली पड़ती जा रही थी और धीरे-धीरे वह भी ख़त्म हो गयी।

क़रीब रास्ते-भर किरीलोव और अबोगिन चुप रहे। अबोगिन सिर्फ़ एक बार गहरी साँस लेकर बड़बड़ाया:

“कैसी दारुण परिस्थिति है! जो आत्मीय हैं, उन पर इतना प्रेम कभी नहीं उमड़ता जितना तब जब उन्हें खो बैठने पर डर पैदा हो जाता है।”

फिर जब नदी पार करने के लिए गाड़ी धीमी हुई किरीलोव यकायक चौंक पड़ा मानो पानी की छपछप ने उसे चौंका दिया हो और अपने स्थान से हिलकर उदास लहज़े में बोला:

“देखिये, मुझे जाने दीजिये। मैं बाद में आ जाऊँगा। मैं सिर्फ़ अपने सहकारी को अपनी पत्नी के पास भेजना चाहता हूँ। वह तो बिल्कुल ही अकेली रह गयी है, न!”

अबोगिन ने कुछ नहीं कहा। नदी के तल में पड़े पत्थरों से पहियों के लड़ने से गाड़ी डगमगायी और रेतीले किनारे पर निकलकर आगे बढ़ गयी। सन्तप्त किरीलोव बेचैनी से कुलबुलाता और अपने आसपास झाँकता। सितारों की हल्की रोशनी में, रास्ता और नदी के किनारे की बेंत के झाड़ अँधेरे में ग़ायब होते दिखायी पड़ते। दाहिनी ओर मैदान फैला था, आकाश की तरह निस्सीम और समतल। वहाँ दूरी पर छुटपुट रोशनियाँ झिलमिला रही थीं जो शायद दलदल की सड़ी घास से चमक रही थीं। बायीं

ओर, रास्ते के समानान्तर एक पहाड़ था, जो झाड़ियों के कारण झबरा लग रहा था और जिस के ऊपर बड़ा, लाल हँसिया-सा चाँद स्थिर रूप से लटका हुआ था, कुहरे से वह कुछ धुँधला लग रहा था और उसके चारों तरफ़ छोटी-छोटी बदलियाँ घिरी हुई थीं, मानो उसे चारों ओर से देख उस पर पहरा दे रही हों कि वह कहीं चला न जाये।

पूरी प्रकृति निराशा और रोग से व्याप्त मालूम पड़ती थी। अँधेरे कमरे में अकेली बैठी पतित स्त्री की तरह जो अपना विगत भुलाने की कोशिश कर रही हो, पृथ्वी वसन्त और ग्रीष्म की स्मृतियों से परेशान हो अनिवार्य शरद की उपेक्षापूर्ण प्रतीक्षा में थी। जिधर भी निगाह जाती प्रकृति अँधेरा, असीम गहरा, ठण्डा गड्ढा मालूम पड़ती जिसमें से न किरीलोव, न अबोगिन और न लाल चाँद का हँसिया कभी भी उबर सकेंगे...

गाड़ी जैसे-जैसे गन्तव्य स्थान के पास पहुँचती जाती, अबोगिन उतना ही धैर्यहीन होता जाता। वह उठता, बैठता, चौंककर उछल पड़ता, आगे कोचवान के कन्धे के ऊपर से ताकता। अन्ततः गाड़ी जब धारीदार किरमिच के परदे से रुचिपूर्ण ढंग से सजे ओसारे में जाकर रुकी, उसने जल्दी और ज़ोर से साँसें लेते हुए दूसरी मंज़िल की खिड़कियों की ओर ताका जिनसे रोशनी आ रही थी।

“अगर कुछ हो गया तो... मैं बरदाश्त न कर पाऊँगा,” उसने डॉक्टर के साथ ड्योढ़ी की ओर बढ़ते और घबराहट में हाथ मलते हुए कहा। “पर परेशानी प्रकट करने वाली कोई आवाज़ तो सुनायी नहीं पड़ती, इसलिए अब तक सब कुछ ठीक ही होगा,” सन्नाटे में कुछ सुन पाने के लिए कान लगाये, वह बोला।

ड्योढ़ी में बोलने या क़दमों की आवाज़ भी नहीं सुनायी पड़ रही थी और पूरा घर तेज़ रोशनी के बावजूद सोया हुआ लग रहा था। अभी तक अँधेरे में रहने के बाद किरीलोव और अबोगिन अब एक-दूसरे को अच्छी तरह देख सकते थे। डॉक्टर लम्बा, झुके कन्धों वाला था और बेपरवाही से भौंड़े कपड़े पहने था। वह सुन्दर नहीं था। उसके मोटे, कुछ-कुछ हबशियों जैसे होंठ, लम्बी टेढ़ी नाक और आलस्य व उपेक्षा भरी निगाह में कुछ ऐसा था जो कठोर, रूखा, निष्ठुर लगता था। उसके बेकढ़े बाल, धँसी हुई कनपटी, लम्बी नुकीली दाढ़ी की असमय सफ़ेदी, जिसमें से बीच-बीच में उसकी ठुड्डी झलकती थी, उसकी त्वचा का मिट्टी जैसा फीकापन, उसका बेढ़ंगा और लापरवाही भरा बरताव - सभी जीवन तथा लोगों से, ऊब, ग़रीबी और

आवश्यकताओं की पूर्तिहीनता प्रकट करते थे। उसकी भावहीन आकृति से यह प्रकट नहीं होता था कि इस शख़्स के भी पत्नी है और वह अपने बच्चे के लिए रो भी सकता है। अबोगिन बिल्कुल भिन्न था। वह हट्टा-कट्टा सुनहरे बालों वाला आदमी था, उसका सिर बड़ा था और नाक-नक़्शा बड़ा, पर मुलायम था, वह बिल्कुल नये फ़ैशन के कपड़े बड़े सुन्दर ढंग से पहने हुए था। उसकी चाल-ढाल में कुलीनता थी। उसके बड़े-बड़े बालों की लटों, उसके चेहरे और कसकर बन्द किये गये फ्रॉक कोट से कुछ-कुछ शेर जैसी बात लगती थी। वह चलता तो सिर उठाकर, सीना आगे निकालकर और बड़ी भली लगने वाली भारी आवाज़ में बोलता। जिस ढंग से उसने गुलूबन्द उतारा और बालों पर हाथ फेरा उसमें स्त्रियों जैसी सुघड़ता और छवि थी। यहाँ तक कि उसकी उदासी व पीलेपन और ओवरकोट उतारते हुए सीढ़ियों की ओर बच्चों जैसी झिझक से ताकने से भी उसके व्यक्तित्व से समृद्धि, स्वास्थ्य और आत्मविश्वास की छाप बिगड़ नहीं पाती थी।

सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसने कहा - “न कोई आवाज़ है और न कोई दिखायी ही पड़ता है, कहीं कोई हलचल खलबली भी नहीं है, ईश्वर करे...”

अबोगिन डॉक्टर को ड्योढ़ी से होते हुए हॉल में ले गया जहाँ एक पियानो की काली आकृति दिखायी पड़ रही थी और छत से ढीले सफ़ेद आवरण में फानूस लटक रहा था। यहाँ से वे एक छोटे दीवानख़ाने में गये जो आरामदेह और सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा था और जिसमें एक तरह की गुलाबी कान्ति झिलमिला रही थी।

“डॉक्टर! आप यहाँ बैठें और प्रतीक्षा करें,” अबोगिन बोला, “मैं अभी एक मिनट में आता हूँ। मैं जाकर देख लूँ और बता दूँ कि आप आ गये हैं।”

किरीलोव अकेला रह गया। दीवानख़ाने की विलासिता, मधुर सान्ध्य प्रकाश, अजनबी अनजाने घर में उसकी मौजूदगी जो स्वयं अपने में एक उल्लेखनीय घटना थी, इन सबका उस पर कोई प्रभाव पड़ता नहीं लग रहा था। वह एक आरामकुर्सी पर बैठ गया और कारबोलिक के निशान पड़ी अपनी उँगलियों की ओर देखने लगा। उसने लाल लैम्प-शेड और वायलिन के केस की ओर हल्की निगाह दौड़ायी और टिक-टिक करती घड़ी की ओर देखकर उसने एक भेड़िया ज़रूर देख लिया जिसको मारकर खाल भर दी गयी थी जो अबोगिन की तरह ही भारी-भरकम और खाया-पिया मालूम पड़ता था।

सब ओर शान्ति थी...दूर, किसी दूसरे कमरे में किसी ने ज़ोर से आह भरी, किसी अलमारी का शीशे का दरवाज़ा झनझनाया और फिर शान्ति छा गयी। कोई पाँचेक मिनट के बाद किरीलोव ने हाथों की ओर निहारना छोड़ उस दरवाज़े की ओर देखा जिससे अबोगिन गया था।

अबोगिन दरवाज़े में खड़ा था, पर वह अब वही अबोगिन नहीं था जो कमरे से गया था। उसकी परिष्कृत सुघड़ता और खाया-पिया होने की छवि उसे दग़ा दे गयी थी। उसके चेहरे, हाथों व मुद्रा पर एक विरक्ति का भाव अंकित था जो मानो भय था या शारीरिक कष्ट। उसकी नाक, होंठ, मूँछें, उसका सारा चेहरा फड़क रहा था, मानो वे उसके चेहरे से फूटकर अलग निकल पड़ना चाहते हों, उसकी आँखों में पीड़ा की चमक थी...

लम्बे भारी डग भरता हुआ वह दीवानख़ाने के बीच आ खड़ा हुआ, फिर आगे झुककर मुट्ठियाँ बाँधते हुए कराहा।

“वह मुझे दग़ा दे गयी!” ‘दग़ा’ पर ज़ोर देते हुए वह चिल्लाया। “दग़ा दे गयी! मुझे छोड़कर भाग गयी! बीमार पड़ी और मुझे डॉक्टर लाने भेजा सिर्फ़ इसलिए कि वह उस बन्दर पापचिंस्की के साथ भाग जाये! हे भगवान!”

अबोगिन भारी क़दम भरता हुआ डॉक्टर के पास तक चला आया और उसके चेहरे के पास अपना भरा, सफ़ेद घूँसा हिलाता हुआ चिल्लाया:

“मुझे छोड़ गयी!! दग़ा दे गयी! यह सब झूठ क्यों?! हे भगवान! ही भगवान! यह गन्दी, फ़रेब भरी चालबाज़ी क्यों, यह शैतानियत भरा धोखे का खेल क्यों? मैंने उसका क्या बिगाड़ा था? वह मुझे छोड़ गयी!”

आँसू उसके गालों पर छलक आये। वह मुड़ा और दीवानख़ाने में इधर-उधर टहलने लगा। छोटे फ्रॉक कोट व फ़ैशनेबुल चुस्त पतलून में जिससे बड़े बालों वाले भारी सिर वाले उसके जिस्म के मुक़ाबले उसकी टाँगें बहुत पतली मालूम पड़ती थीं, वह अब और भी ज़्यादा शेर की तरह लग रहा था। डॉक्टर के उदासीन चेहरे पर जिज्ञासा की झलक आयी, वह उठ खड़ा हुआ और अबोगिन की ओर देखता हुआ बोला:

“पर मरीज़ कहाँ है?”

“मरीज़! मरीज़!” हँसता और रोता, मुट्ठियाँ हिलाता अबोगिन चिल्लाया, “वह मरीज़ नहीं है, अधम दुष्टा है! कितना कमीनापन! कितनी कलुषता! आप सोचेंगे शैतान ख़ुद इससे ज़्यादा घिनौनी बात न सोच पाता! मुझे भेज दिया ताकि वह भाग सके, उस बन्दर, उस दलाल, उस भौंड़े भाँड के साथ भाग जाये! हे भगवान! इससे अच्छा होता कि वह मर जाती! मैं बरदाश्त नहीं कर सकूँगा, कभी नहीं!”

डॉक्टर तनकर खड़ा हो गया। उसने आँसुओं से भरी आँखें झपकायीं, उसकी नुकीली दाढ़ी भी जबड़ों के साथ बायें से दायें हिल रही थी। भौचक्का हो बोला:

“माफ़ कीजिये पर इसका मतलब क्या है? मेरा बच्चा मर गया है, मेरी पत्नी शोक से व्याकुल है, घर में अकेली है...ख़ुद मैं मुश्किल से खड़ा हो पा रहा हूँ, तीन रात से मैं सोया नहीं हूँ...और यहाँ मुझे क्या पता लगता है? मैं एक भद्दी भँड़ैत में पार्ट करने को बुलाया गया हूँ। एक तरह से स्टेज की सामग्री-भर बना दिया गया हूँ। मैं...मेरी तो समझ में नहीं आता!”

अबोगिन ने एक मुट्ठी खोली और मुड़ा-मुड़ाया पुर्जा फ़र्श पर डालकर उसे कुचल दिया, मानो वह कोई कीड़ा रहा हो जिसे वह नष्ट कर डालना चाहता था। अपने चेहरे के सामने मुट्ठी हिलाते हुए, दाँत भींचकर वह बोला:

“और मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया, कुछ समझा नहीं! मैंने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि वह रोज़ मेरे यहाँ आता है, इस बात पर ग़ौर नहीं किया कि आज वह मेरे घर बग्घी में आया था। बग्घी में क्यों? मैं अन्धा और मूर्ख था जो इस बात पर सोचा तक नहीं! अन्धा और मूर्ख!” उसके चेहरे से लग रहा था मानो किसी ने उसके पैर का घट्ठा कुचल दिया हो।

डॉक्टर फिर बड़बड़ाया - “मैं...मेरी समझ में नहीं आता! इस सबका मतलब क्या है? यह तो किसी इन्सान की हिक़ारत करना हुआ, इन्सान के दुख और वेदना का मज़ाक़ उड़ाना हुआ! यह तो बिल्कुल नामुमकिन बात है...मैंने तो अपनी ज़िन्दगी में कभी ऐसी बात सुनी तक नहीं!”

भारी चौंकाहट की भावना में, उस व्यक्ति की तरह जो अब समझ रहा हो कि उसका बड़ा भारी अपमान किया गया है, डॉक्टर ने अपने कन्धे झँझोड़े और बेबसी में हाथ फैला दिये, बोलने या कुछ कर सकने में असमर्थ वह आरामकुर्सी में फिर धँस गया।

“तो तुम अब मुझे प्यार नहीं करतीं, किसी दूसरे से प्रेम करती हो - अच्छी बात है, पर यह धोखा क्यों, यह कमीनी दगाबाज़ी की हरकत क्यों?” रुआँसे स्वर में अबोगिन बोला। “इससे किसका भला होगा? और यह किया क्यों? मैंने तुम्हारा कब क्या बिगाड़ा था? डॉक्टर!” वह आवेग में किरीलोव के पास जाता हुआ चिल्लाया - “आप मेरे दुर्भाग्य के अवश बन गये साक्षी हैं और मैं आपसे सच बात नहीं छिपाऊँगा। मैं क़सम खाता हूँ, उस औरत से मैं मुहब्बत करता था, मैं उसकी पूजा करता था, मैं उसका ग़ुलाम था! मैंने उसके लिए हर चीज़ की क़ुर्बानी की - अपने रिश्तेदारों से झगड़ा किया, नौकरी छोड़ दी, संगीत का अपना शौक़ छोड़ दिया, उन बातों के लिए उसे माफ़ कर दिया जिनके लिए मैं अपनी माँ या बहन को माफ़ न करता...मैंने उसकी ओर कभी कड़ी निगाह से ताका तक नहीं... मैंने कभी उसे बुरा मानने का ज़रा-सा मौक़ा नहीं दिया! यह सब झूठ और फ़रेब है क्यों? अगर तुम मुझे प्यार नहीं करतीं तो ऐसा साफ़-साफ़ कह क्यों नहीं दिया - इन सब मामलों में तुम मेरी राय जानती थीं...”

आँखों में आँसू भरे, काँपते हुए, अबोगिन ने ईमानदारी से अपना दिल डॉक्टर के सामने खोलकर रख दिया। वह भावोद्रेक से आवेग में बोल रहा था, सीने से हाथ लगाये हुए, बिना किसी झिझक के वह गोपनीय घरेलू बातें बता रहा था, वास्तव में, एक तरह से आश्वस्त-सा होता हुआ कि आख़िरकार ये गोपनीय बातें अब खुल गयीं। अगर इसी तरह वह घण्टे-भर और बोल लेता, अपने दिल की बात कह लेता, गुबार निकाल लेता तो इसमें संशय नहीं कि वह बेहतर महसूस करने लगता। कौन जाने, अगर डॉक्टर दोस्ताना हमदर्दी से उसकी बातें सुन लेता, शायद, जैसा कि अक्सर होता है, वह ना-नुकर किये बिना और अनावश्यक ग़लतियाँ किये बग़ैर ही अपने प्रारब्ध से सन्तुष्ट हो जाता...पर हुआ कुछ और ही। जब अबोगिन बोल रहा था, अपमानित डॉक्टर के चेहरे पर एक परिवर्तन होता दिखायी दिया। उसके चेहरे पर जो उदासीनता और स्तब्धता का भाव था वह मिट गया और उसकी जगह क्रोध, घोर अपमान और रोष ने ले ली। उसका चेहरा और भी कठोर, अप्रिय व हठपूर्ण हो गया। अबोगिन ने जब उसे घोर धार्मिक पादरिनों जैसे रूखे व भावशून्य चेहरे वाली एक सुन्दर नवयुवती का फ़ोटो दिखाते हुए पूछा कि क्या कोई यक़ीन कर सकता है कि इस चेहरे वाली औरत झूठ बोल सकती है, डॉक्टर यकायक झटके से खड़ा हो गया, उसकी आँखों में एक वहशियाना चमक आ गयी और हर लफ़्ज़ पर ज़ोर देते हुए वह रुखाई से बोला:

“आप मुझे यह सब क्यों बता रहे हैं? मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है, मैं यह सब नहीं सुनूँगा!” वह मेज़ पर हाथ पटककर चिल्लाने लगा था, “मुझे आपके ओछे रहस्यों की कोई ज़रूरत नहीं है! बुरा हो उनका! मुझसे ऐसी निजी बातें करने की हिम्मत भी न करना! शायद आप समझते हैं कि मेरा अभी तक काफ़ी अपमान नहीं हुआ? आप मुझे अपना नौकर समझते हैं जिसका आप अपमान कर सकते हैं? क्यों, है न?”

अबोगिन किरीलोव के पास से पीछे हट गया और स्तम्भित हो उसकी ओर देखने लगा।

“आप मुझे यहाँ लाये क्यों?” डॉक्टर कहता गया, उसकी दाढ़ी हिल रही थी। “आपने शादी की क्योंकि इससे ज़्यादा अच्छा कोई और काम आपको था नहीं, और इसीलिए आप अपना ओछा नाटक मनमाने ढंग से खेलते रहें, पर मुझे इससे क्या लेना-देना? मुझे आपके प्यार-मुहब्बत से क्या सरोकार? मुझे तो चैन से छोड़ दो! आप अपनी सभ्य मुक्केबाज़ी कीजिये, अपने मानवतावादी विचार बघारिये, (वायलिन केस की ओर कनखियों से देखते हुए) अपने बाजे बजाइये, मुर्गे की तरह मुटाइये, लेकिन लोगों का अपमान करने की हिम्मत न कीजिये! अगर आप उनका सम्मान नहीं कर सकते तो उनसे अलग ही रहिये, बस!”

अबोगिन का चेहरा लाल हो गया, उसने पूछा:

“इसका मतलब क्या है?”

“इसका मतलब यह है कि लोगों के साथ यह कमीना और कुत्सित खिलवाड़ है! मैं डॉक्टर हूँ, आप डॉक्टरों को, बल्कि हर ऐसा काम करने वालों को, जिसमें इत्र और वेश्यावृत्ति की गन्ध नहीं आती, नौकर, बदमाश क़िस्म का आदमी समझते हैं, आप समझें; पर दुखी व्यक्ति को नाटक की सामग्री समझने का आपको कोई अधिकार नहीं है!”

अबोगिन का चेहरा गुस्से से फड़क रहा था, उसने हलके से पूछा - “मुझसे ऐसी बात करने की आपकी हिम्मत कैसे हुई?”

मेज़ पर फिर घूँसा मारते हुए डॉक्टर चिल्लाया - "मेरा दुख जानते हुए, अपनी अनाप-शनाप बातें सुनाने के लिए मुझे यहाँ लाने की हिम्मत आपको कैसे हुई? दूसरे के दुख का मखौल करने का हक़ आपको किसने दिया?"

अबोगिन चिल्लाया - "आप ज़रूर पागल हैं! कैसी निर्दयता है! मैं ख़ुद कितना अधिक दुखी हूँ...और...और..."

नफ़रत से मुस्कुराकर डॉक्टर ने कहा - "दुखी! आप इस शब्द का प्रयोग न कीजिये, इसका आपसे कोई वास्ता नहीं। जो निकम्मे आवारा क़र्ज़ नहीं ले पाते वे भी अपने को दुखी कहते हैं। मुटापे से परेशान मुर्ग़ा भी दुखी होता है। ओछे आदमी!"

गुस्से से पिपियाते हुए अबोगिन ने कहा - "जनाब, अपने को भूल रहे हैं! ऐसी बातों का जवाब लातों से दिया जाता है। समझें?"

अबोगिन ने जल्दी से अन्दर की जेब टटोलकर उसमें से नोटों की एक गड्डी निकाली और उसमें से दो नोट निकालकर मेज़ पर पटक दिये। नथुने फड़काते हुए उसने कहा:

"यह रही आपकी फ़ीस, आपके दाम अदा हो गये!"

नोटों को ज़मीन पर फेंकते हुए डॉक्टर चिल्लाया:

"मुझे रुपये देने की गुस्ताख़ी न कीजिये! अपमान रुपये से नहीं धुल सकता!"

अबोगिन और डॉक्टर एक-दूसरे से गुस्से में ऐसी अपमानजनक बातें कहने लगे जो अनुचित थीं। उन दोनों ने जीवन-भर शायद सन्निपात में भी कभी इतनी अनुचित, निर्दयतापूर्ण और बेहूदी बातें नहीं कही थीं। दोनों में वेदनाजन्य अहं जाग गया था। जो वेदना में होते हैं उनका अहं बहुत बढ़ जाता है; वे क्रोधी, नृशंस और अन्यायी हो जाते हैं; वे एक-दूसरे को समझने में मूर्खों से भी ज़्यादा असमर्थ होते हैं। दुर्भाग्य लोगों को मिलाने की जगह अलग करता है, और जब कि यह समझा जाता है कि एक ही तरह का दुख पड़ने पर लोग एक-दूसरे के निकट आयेंगे, वास्तविकता यह है कि ऐसे लोग अपेक्षाकृत सन्तुष्ट लोगों से बहुत ज़्यादा नृशंस व अन्यायी साबित होते हैं।

डॉक्टर चिल्लाया - “मेहरबानी करके मुझे मेरे घर पहुँचा दीजिये!” गुस्से से उसका दम फूल रहा था।

अबोगिन ने ज़ोर से घण्टी बजायी। जब उसकी पुकार पर कोई नहीं आया, तब अपने गुस्से में घण्टी फ़र्श पर फेंक दी। कालीन पर एक हल्की खोखली आह-सी भरती हुई घण्टी ख़ामोश हो गयी। एक नौकर आया।

घूसा ताने अबोगिन ज़ोर से चीख़ा - “तुम लोग कहाँ छिपे थे? तेरा सत्यानाश हो! तू अभी था कहाँ? जा, इस भलेमानस के लिए गाड़ी लाने को कह और मेरे लिए बग्घी निकलवा!” जैसे ही नौकर जाने के लिए मुड़ा, अबोगिन फिर चिल्लाया - “ठहर! कल इस घर में एक भी ग़द्दार दग़ाबाज़ नहीं रहेगा! सब निकल जायें! मैं नये नौकर रखूँगा, दुष्ट कहीं के!”

गाड़ियों के लिए इन्तज़ार करते समय डॉक्टर और अबोगिन ख़ामोश रहे। हष्ट-पुष्ट और नाज़ुक सुरुचि का भाव अबोगिन के चेहरे पर फिर लौट आया था। बड़े सभ्य लहज़े में वह अपना सिर हिलाता हुआ, कुछ योजना-सी बनाता हुआ कमरे में टहलता रहा। उसका क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था, लेकिन वह ऐसा ज़ाहिर करने की कोशिश कर रहा था मानो कमरे में दुश्मन की मौजूदगी की ओर उसका ध्यान भी न गया हो...डॉक्टर एक हाथ से मेज़ पकड़े हुए स्थिर खड़ा अबोगिन की ओर बदनुमा, गहरी हिक़ारत की निगाह से ताक रहा था, ऐसी नफ़रत से देख रहा था जैसी कि सन्तुष्टि और सुरुचि देखकर केवल निर्धन और दुखी लोगों की नज़रों में आ पाती है।

कुछ देर बाद, जब डॉक्टर गाड़ी में बैठा अपने घर जा रहा था, उसकी आँखों में तब भी घृणा की वही भावना क़ायम थी। घण्टे-भर पहले जितना अँधेरा था, अब वह उससे ज़्यादा बढ़ गया था। दूज का लाल चाँद पहाड़ी के पीछे छिप गया था और उसकी रखवाली करने वाले बादल सितारों के आस-पास काले धब्बों की तरह पड़े थे। पीछे से सड़क पर पहियों की आवाज़ सुनायी दी और बग्घी की लाल रंग की लालटेनों की चमक डॉक्टर की गाड़ी के आगे आ गयी। यह अबोगिन था जो प्रतिवाद करने, झगड़ा करने, ग़लतियाँ करने पर उतारू...

रास्ते-भर डॉक्टर अपनी पत्नी या पुत्र आन्द्रेई के बारे में नहीं, अबोगिन और उस घर में रहने वाले के बारे में सोचता रहा जिसे वह अभी छोड़कर आया था। उसके विचार

नृशंस और अन्यायपूर्ण थे। उसने अबोगिन, उसकी बीवी, पापचिंस्की, सुगन्धित, गुलाबी उषा में रहने वाले सभी लोगों के विरुद्ध क्षोभ प्रकट किया और रास्ते-भर बराबर वह इन लोगों के बारे में घृणा और नफ़रत की बातें ही सोचता रहा, यहाँ तक कि उसके दिल में दर्द होने लगा और ऐसे लोगों के प्रति एक ऐसा ही दृष्टिकोण उसके दिमाग़ में स्थिर हो गया।

वक़्त गुज़रेगा और किरीलोव का दुख भी गुज़र जायेगा लेकिन यह अन्यायपूर्ण दृष्टिकोण जो मानवोचित नहीं है, नहीं गुज़र पायेगा और डॉक्टर के साथ रहेगा ज़िन्दगी-भर, उसकी मौत के दिन तक।

(1887)



Anton Chekhov's Story - Enemies

At ten o'clock on a dark September evening six-year-old Andrei, the only son of Dr. Kiríloff, a Zemstvo physician, died from diphtheria. The doctor's wife had just thrown herself upon her knees at the bedside of her dead child, and was giving way to the first ecstasy of despair, when the hall-doorbell rang loudly. Owing to the danger of infection all the servants had been sent out of the house that morning; and Kiríloff, in his shirtsleeves, with unbuttoned waistcoat, with sweating face, and hands burned with carbolic acid, opened

the door himself. The hall was dark, and the stranger who entered it was hardly visible. All that Kiríloff could distinguish was that he was of middle height, that he wore a white muffler, and had a big, extraordinarily pale face—a face so pale that at first it seemed to illumine the darkness of the hall.

“Is the doctor at home?” he asked quickly.

“I am the doctor,” answered Kiríloff, “What do you want?”

“Ah, it is you. I am glad!” said the stranger. He stretched out through the darkness for the doctor’s hand, found it, and pressed it tightly. “I am very … very glad. We are acquaintances. My name is Abógin…. I had the pleasure of meeting you last summer at Gnutcheffs. I am very glad that you are in…. For the love of Christ do not refuse to come with me at once…. My wife is dangerously ill…. I have brought a trap.”

From Abógin’s voice and movements it was plain that he was greatly agitated. Like a man frightened by a fire or by a mad dog, he could not contain his breath. He spoke rapidly in a trembling voice, and something inexpressibly sincere and childishly imploring sounded in his speech. But, like all men frightened and thunderstruck, he spoke in short abrupt phrases, and used many superfluous and inconsequential words.

“I was afraid I should not find you at home,” he continued. “While I was driving here I was in a state of torture…. Dress and come at once, for the love of God … It happened thus. Paptchinski—Alexander Semionevitch—whom you know, had driven over…. We talked for awhile … then we had tea; suddenly my wife screamed, laid her hand upon her heart, and fell against the back of the chair. We put her on the bed…. I bathed her forehead with ammonia, and sprinkled her with water … she lies like a corpse…. It is aneurism…. Come…. Her father died from aneurism….”

Kiríloff listened and said nothing. It seemed he had forgotten his own language. But when Abógin repeated what he had said about Paptchinski and about his wife’s father, the doctor shook his head, and said apathetically, drawling every word:

“Excuse me, I cannot go…. Five minutes ago … my child died.”

“Is it possible?” cried Abógin, taking a step hack. “Good God, at what an unlucky time I have come! An amazingly unhappy day … amazing! What a coincidence … as if on purpose.”

Abógin put his hand upon the door-handle, and inclined his head as if in doubt. He was plainly undecided as to what to do; whether to go, or again to ask the doctor to come.

“Listen to me,” he said passionately, seizing Kiríloff by the arm; “I thoroughly understand your position. God is my witness that I feel shame in trying to distract your attention at such a moment, but … what can I do? Judge yourself—whom can I apply to? Except you, there is no doctor in the neighbourhood. Come! For the love of God! It is not for myself I ask…. It is not I who am ill.”

A silence followed. Kiríloff turned his back to Abógin, for a moment stood still, and went slowly from the anteroom into the hall. Judging by his uncertain, mechanical gait, by the care with which he straightened the shade upon the unlit lamp, and looked into a thick book which lay upon the table—in this moment he had no intentions, no wishes, thought of nothing; and probably had even forgotten that in the anteroom a stranger was waiting. The twilight and silence of the hall apparently intensified his stupor. Walking from the hall into his study, he raised his right leg high, and sought with his hands the doorpost. All his figure showed a strange uncertainty, as if he were in another’s house, or for the first time in life were intoxicated, and were surrendering himself questioningly to the new sensation. Along the wall of the study and across the bookshelves ran a long zone of light. Together with a heavy, close smell of carbolic and ether, this light came from a slightly opened door which led from the study into the bedroom. The doctor threw himself into an armchair before the table. A minute he looked drowsily at the illumined books, and then rose, and went into the bedroom.

In the bedroom reigned the silence of the grave. All, to the smallest trifle, spoke eloquently of a struggle just lived through, of exhaustion, and of final rest. A candle standing on the stool among phials, boxes, and jars, and a large lamp upon the dressing-table lighted the room. On the bed beside the window lay a boy with open eyes and an expression of surprise upon his face. He did not move, but his eyes, it seemed, every second grew darker and darker, and vanished into his skull. With her hands upon his body, and her face hidden in the folds of the bedclothes, knelt the mother. Like the child, she made no movement; life showed itself alone in the bend of her back and in the position of her hands. She pressed against the bed with all her being, with force and eagerness, us if she feared to destroy the tranquil and convenient pose which she had found for her weary body. Counterpane, dressings, jars, pools on the floor, brashes and spoons scattered here and there, the white bottle of lime-water, the very air, heavy and stifling—all were dead and seemed immersed in rest.

The doctor stopped near his wife, thrust his hands into his trouser pockets, and turning his head, bent his gaze upon his son. His face expressed indifference; only by the drops upon his beard could it be seen that he had just been crying.

The repellent terror which we conceive when we speak of death was absent from the room. The general stupefaction, the mother's pose, the father's indifferent face, exhaled something attractive and touching; exhaled that subtle, intangible beauty of human sorrow which cannot be analysed or described, and which music alone can express. Beauty breathed even in the grim tranquillity of the mourners. Kiríloff and his wife were silent; they did not weep, as if in addition to the weight of their sorrow they were conscious also of the poetry of their position. It seemed that they were thinking how in its time their youth had passed, how now with this child had passed even their right to have children at all. The doctor was forty-four years old, already grey, with the face of an old man; his faded and sickly wife, thirty-five. Andreï was not only their only son, but also their last.

In contrast with his wife, Kiríloff belonged to those natures which in time of spiritual pain feel a need for movement. After standing five minutes beside his wife, he, again lifting high his right leg, went from the bedroom into a little room half taken up by a long, broad sofa, and thence into the kitchen. After wandering about the stove and the cook's bed he bowed his head and went through a little door back to the anteroom. Here again he saw the white muffler and the pale face.

"At last!" sighed Abógin, taking hold of the door-handle. "Come, please!"

The doctor shuddered, looked at him, and remembered.

"Listen to me; have I not already told you I cannot come?" he said, waking up. "How extraordinary!"

"Doctor, I am not made of stone…. I thoroughly understand your position…. I sympathise with you!" said Abógin, with an imploring voice, laying one hand upon his muffler. "But I am not asking this for myself…. My wife is dying! If you had heard her cry, if you had seen her face, then you would understand my persistence! My God! and I thought that you had gone to get ready! Dr. Kiríloff, time is precious. Come, I implore you!"

"I cannot go," said Kiríloff with a pause between each word. Then he returned to the hall.

Abógin went after him, and seized him by the arm.

“You are overcome by your sorrow—that I understand. But remember … I am not asking you to come and cure a toothache … not as an adviser … but to save a human life,” he continued, in the voice of a beggar. “A human life should be supreme over every personal sorrow…. I beg of you manliness, an exploit!… In the name of humanity!”

“Humanity is a stick with two ends,” said Kiríloff with irritation. “In the name of the same humanity I beg of you not to drag me away. How strange this seems! Here I am hardly standing on my legs, yet you worry me with your humanity! At the present moment I am good for nothing…. I will not go on any consideration! And for whom should I leave my wife? No…. No.”

Kiríloff waved his hands and staggered back.

“Do not … do not ask me,” he continued in a frightened voice. “Excuse me…. By the Thirteenth Volume of the Code I am bound to go, and you have the right to drag me by the arm…. If you will have it, drag me … but I am useless…. Even for conversation I am not in a fit state…. Excuse me.”

“It is useless, doctor, for you to speak to me in that tone,” said Abógin, again taking Kiríloff’s arm. “The devil take your Thirteenth Volume!… To do violence to your will I have no right. If you will, come; if you don’t, then God be with you; but it is not to your will that I appeal, but to your heart!… A young woman is at the point of death! This moment your own son has died, and who if not you should understand my terror?”

Abógin’s voice trembled with agitation; in tremble and in tone was something more persuasive than in the words. He was certainly sincere; but it was remarkable that no matter how well chosen his phrases, they seemed to come from him stilted, soulless, inappropriately ornate, to such an extent that they seemed an insult to the atmosphere of the doctor’s house and to his own dying wife. He felt this himself, and therefore, fearing to be misunderstood, he tried with all his force to make his voice sound soft and tender, so as to win if not with words at least by sincerity of tone. In general, phrases, however beautiful and profound, act only on those who are indifferent, and seldom satisfy the happy or unhappy; it is for this reason that the most touching expression of joy or sorrow is always silence; sweethearts understand one another best when they are silent; and a burning passionate eulogy spoken above a grave touches only the strangers present, and seems to widow and child inexpressive and cold.

Kiríloff stood still and said nothing. When Abógin used some more phrases about the high vocation of a physician, self-sacrifice, and so on, the doctor asked gloomily:

“Is it far?”

“Something between thirteen and fourteen versts. I have excellent horses. I give you my word of honour to bring you there and back in an hour. In a single hour!”

The last words aided on the doctor more powerfully than the references to humanity and the vocation of a doctor. He thought for a moment and said, with a sigh:

“All right…. I will go.”

With a rapid, steady gait he went into his study, and after a moment’s delay returned with a long overcoat. Moving nervously beside him, shuffling his feet, and overjoyed, Abógin helped him into his coat. Together they left the house.

It was dark outside, but not so dark as in the anteroom. In the darkness was clearly defined the outline of the tall, stooping doctor, with his long, narrow beard and eagle nose. As for Abógin, in addition to his pale face the doctor could now distinguish a big head, and a little student’s cap barely covering the crown. The white muffler gleamed only in front; behind, it was hidden under long hair.

“Believe me, I appreciate your generosity,” he muttered, seating the doctor in the calêche. “We will get there in no time. Listen, Luka, old man, drive as hard as you can! Quick!”

The coachman drove rapidly. First they flew past a row of ugly buildings, with a great open yard; everywhere around it was dark, but from a window a bright light glimmered through the palisade, and three windows in the upper story of the great block seemed paler than the air. After that they drove through intense darkness. There was a smell of mushroom dampness, and a lisping of trees; ravens awakened by the noise of the calêche stirred in the foliage, and raised a frightened, complaining cry, as if they knew that Kiríloff’s son was dead, and that Abógin’s wife was dying. They flashed past single trees, past a coppice; a pond, crossed with great black shadows, scintillated—and the calêche rolled across a level plain. The cry of the ravens was heard indistinctly far behind, and then ceased entirely.

For nearly the whole way Abógin and Kiríloff were silent. Only once, Abógin sighed and exclaimed:

“A frightful business! A man never so loves those who are near to him as when he is in danger of losing them.”

And when the calêche slowly crossed the river, Kiríloff started suddenly as if he were frightened by the plash of the water, and moved.

“Listen! Let me go for a moment,” he said wearily. “I will come again. I must send a feldscher to my wife. She is alone!”

Abógin did not answer. The calêche, swaying and banging over the stones, crossed a sandy bank, and rolled onward. Kiríloff, wrapped in weariness, looked around him. Behind, in the scanty starlight, gleamed the road; and the willows by the river bank vanished in the darkness. To the right stretched a plain, flat and interminable as heaven; and far in the distance, no doubt on some sodden marsh, gleamed will-of-the-wisps. On the left, running parallel to the road, stretched a hillock, shaggy with a small shrubbery, and over the hill hung immovably a great half-moon, rosy, half muffled in the mist and fringed with light clouds, which, it seemed, watched it on every side, that it might not escape.

On all sides Nature exhaled something hopeless and sickly; the earth, like a fallen woman sitting in her dark chamber and trying to forget the past, seemed tormented with remembrances of spring and summer, and waited in apathy the inevitable winter. Everywhere the world seemed a dark, unfathomable deep, an icy pit from which there was no escape either for Kiríloff or for Abógin or for the red half-moon….

The nearer to its goal whirled the calêche, the more impatient seemed Abógin. He shifted, jumped up, and looked over the coachman’s shoulder. And when at last the carriage stopped before steps handsomely covered with striped drugget, he looked up at the lighted windows of the second story, and panted audibly.

“If anything happens … I will never survive it,” he said, entering the hall with Kiríloff, and rubbing his hands in agitation. But after listening a moment, he added, “There is no confusion … things must be going well.”

In the hall were neither voices nor footsteps, and the whole house, notwithstanding its brilliant lights, seemed asleep. Only now, for the first time, the doctor and Abógin, after their sojourn in darkness, could see one another

plainly. Kiríloff was tall, round-shouldered, and ugly, and was carelessly dressed. His thick, almost negro, lips, his eagle nose, and his withered, indifferent glance, expressed something cutting, unkindly, and rude. His uncombed hair, his sunken temples, the premature grey in the long, narrow beard, through which appeared his chin, the pale grey of his skin, and his careless, angular manners, all reflected a career of need endured, of misfortune, of weariness with life and with men. Judging by his dry figure, no one would ever believe that this man had a wife, and that he had wept over his child.

Abógin was a contrast. He was a thick-set, solid blond, with a big head, with heavy but soft features; and he was dressed elegantly and fashionably. From his carriage, from his closely-buttoned frock-coat, from his mane of hair, and from his face, flowed something noble and leonine; he walked with his head erect and his chest expanded, he spoke in an agreeable baritone, and the way in which he took off his muffler and smoothed his hair breathed a delicate, feminine elegance. Even his pallor, and the childish terror with which, while taking off his coat, he looked up the staircase, did not detract from his dignity, or diminish the satiety, health, and aplomb which his whole figure breathed.

“There is no one about … I can hear nothing,” he said, going upstairs. “There is no confusion…. God is merciful!”

He led the doctor through the hall into a great drawing-room, with a black piano, and lustres in white covers. From this they went into a small, cosy, and well-furnished dining-room, full of a pleasant, rosy twilight.

“Wait a moment,” said Abógin, “I shall be back immediately. I will look around and tell them you are here….”

Kiríloff remained alone. The luxury of the room, the pleasant twilight, and even his presence in the unknown house of a stranger, which had the character of an adventure, apparently did not affect him. He lay back in the armchair and examined his hands, burnt with carbolic acid. Only faintly could he see the bright red lamp shade and a violoncello case. But looking at the other side of the room, where ticked a clock, he noticed a stuffed wolf, as solid and sated as Abógin himself.

Not a sound…. Then in a distant room someone loudly ejaculated “Ah!”; a glass door, probably the door of a wardrobe, closed … and again all was silent. After waiting a moment Kiríloff ceased to examine his hands, and raised his eyes upon the door through which Abógin had gone.

On the threshold stood Abógin. But it was not the Abógin who had left the room. The expression of satiety, the delicate elegance had vanished; his face, his figure, his pose were contorted by a repulsive expression not quite of terror, not quite of physical pain. His nose, his lips, his moustaches, all his features twitched; it seemed they wished to tear themselves off his face; and his eyes were transfigured as if from torture.

Abógin walked heavily into the middle of the room, bent himself in two, groaned, and shook his fists. “Deceived!” he shouted, with a strong hissing accentuation of the second syllable. “Cheated! Gone! Got ill, and sent for a doctor, only to fly with that buffoon Paptchinski! My God!”

Abógin walked heavily up to the doctor, stretched up to his face his white, soft fists, and, shaking them, continued in a howl:

“Gone! Deceived! But why this extra lie? My God! My God! But why this filthy swindler’s trick, this devilish reptile play? What have I ever done? Gone!”

The tears burst from his eyes. He turned on one foot and walked up and down the room. And now in his short coat, in the narrow, fashionable trousers, which made his legs seem too thin for his body, with his great head and mane, he still more closely resembled a lion. On the doctor’s indifferent face appeared curiosity. He rose and looked at Abógin.

“Be so good as to tell me … where is the patient?”

“Patient! Patient!” cried Abógin, with a laugh, a sob, and a shaking of his fists. “This is no sick woman, but a woman accursed! Meanness, baseness, lower than Satan himself could have conceived! Sent for a doctor, to fly with him—to fly with that buffoon, that clown, that Alphonse. Oh, God, better a thousand times that she had died! I cannot bear it…. I cannot bear it!”

The doctor drew himself up. His eyes blinked and filled with team, his narrow beard moved to the right and to the left in accord with the movement of his jaws.

“Be so good as to inform me what is the meaning of this?” he asked, looking around him in curiosity. “My child lies dead, my wife in despair is left alone in a great house. I myself can hardly stand on my feet, for three nights I have not slept, and what is this? am brought here to play in some trivial comedy, to take the part of a property-man…. I don’t understand it!”

Abógin opened one of his fists, flung upon the floor a crumpled paper, and trod on it as upon an insect which he wished to crush.

“And I never saw it! I never understood!” he said through his clenched teeth, shaking one of his fists beside his face, with an expression as if someone had trod upon a corn. “I never noticed that he rode here every day, never noticed that to-day he came in a carriage! Why in a carriage? And I never noticed! Fool!”

“I don’t understand … I really don’t understand,” stammered Kiríloff. “What is the meaning of this? This is practical joking at the expense of another … it is mocking at human suffering. It is impossible. … I have never heard of such a thing!”

With the dull astonishment depicted on his face of a man who is only beginning to understand that he has been badly insulted, the doctor shrugged his shoulders, and not knowing what to say, threw himself in exhaustion into the chair.

“Got tired of me, loved another! Well, God be with them! But why this deception, why this base, this traitorous trick?” cried Abógin in a whining voice. “Why? For what? What have I done to her? Listen, doctor,” he said passionately, coming nearer to Kiríloff. “You are the involuntary witness of my misfortune, and I will not conceal from you the truth. I swear to you that I loved that woman, that I loved her to adoration, that I was her slave. For her I gave up everything; I quarrelled with my parents, I threw up my career and my music, I forgave her what I could not have forgiven in my own mother or sister…. I have never said an unkind word to her…. I gave her no cause! But why this lie? I do not ask for love, but why this shameless deception P If a woman doesn’t love, then let her say so openly, honestly, all the more since she knew my views on that subject….”

With tears in his eyes, and with his body trembling all over, Abógin sincerely poured forth to the doctor his whole soul. He spoke passionately, with both hands pressed to his heart, he revealed family secrets without a moment’s hesitation; and, it seemed, was even relieved when these secrets escaped him. Had he spoken thus for an hour, for two hours, and poured out his soul, he would certainly have felt better. Who knows whether the doctor might not have listened to him, sympathised with him as a friend, and, even without protest, become reconciled to his own unhappiness…. But it happened otherwise. While Abógin spoke, the insulted doctor changed. The indifference and surprise on his face gave way little by little to an expression of bitter offence, indignation, and wrath. His features became sharper,

harder, and more disagreeable. And finally when Abógin held before his eyes the photograph of a young woman with a face handsome but dry and inexpressive as a nun's, and asked him could he, looking at this photograph, imagine that she was capable of telling a lie, the doctor suddenly leaped up, averted his eyes, and said, rudely ringing out every word:

"What do you mean by talking to me like this? I don't want to hear you! I will not listen!" He shouted and banged his fist upon the table. "What have I to do with your stupid secrets, devil take them! You dare to communicate to me these base trifles! Do you not see that I have already been insulted enough? Am I a lackey who will bear insults without retaliation?"

Abógin staggered backwards, and looked at Kiríloff in amazement.

"Why did you bring me here?" continued the doctor, shaking his beard…. "If you marry filth, then storm with your filth, and play your melodramas; but what affair is that of mine? What have I to do with your romances? Leave me alone! Display your well-born meanness, show off your humane ideas, (the doctor pointed to the violoncello case) play on your double basses and trombones, get as fat as a capon, but do not dare to mock the personality of another! If you cannot respect it, then rid it of your detestable attention!"

Abógin reddened. "What does all this mean?" he asked.

"It means this: that it is base and infamous to play practical jokes on other men. I am a doctor; you regard doctors and all other working men who do not smell of scent and prostitution as your lackeys and your servants. But reflect, reflect—no one has I given you the right to make a property man of a suffering human being!"

"You dare to speak this to me?" said Abógin; and his face again twitched, this time plainly from anger.

"Yes … and you, knowing of the misery in my home, have dared to drag me here to witness this insanity," cried the doctor, again banging his fist upon the table. "Who gave you the right to mock at human misfortune?"

"You are out of your mind," said Abógin. "You are not generous. I also am deeply unhappy, and…."

"Unhappy!" cried Kiríloff, with a contemptuous laugh. "Do not touch that word; it ill becomes you. Oafs who have no money to meet their bills also call

themselves unfortunate. Geese that are stuffed with too much fat are also unhappy. Insignificant curs!"

"You forget yourself, you forget yourself!" screamed Abógin. "For words like those … people are horsewhipped. Do you hear me?"

He suddenly thrust his hand into his side pocket, took out a pocket-book, and taking two bank-notes, flung them on the table.

"There you have the money for your visit!" he said, dilating his nostrils. "You are paid!"

"Do not dare to offer money to me," cried Kiríloff, sweeping the notes on to the floor. "For insults money is not the payment."

The two men stood face to face, and in their anger flung insults at one another. It is certain that never in their lives had they uttered so many unjust, inhuman, and ridiculous words. In each was fully expressed the egoism of the unfortunate. And men who are unfortunate, egoistical, angry, unjust, and heartless are even less than stupid men capable of understanding one another. For misfortune does not unite, but severs; and those who should be bound by community of sorrow are much more unjust and heartless than the happy and contented.

"Be so good as to send me home!" cried the doctor at last.

Abógin rang sharply. Receiving no answer he rang again, and angrily flung the bell upon the floor; it fell heavily on the carpet and emitted a plaintive and ominous sound…. A footman appeared.

"Where have you been hiding yourself? May Satan take you!" roared Abógin, rushing at him with clenched fists. "Where have you been? Go, tell them at once to give this gentleman the calêche, and get the carriage ready for me!… Stop!" he cried, when the servant turned to go. "To-morrow let none of you traitors remain in this house! The whole pack of you! I will get others! Curs!"

Awaiting their carriages, Abógin and Kiríloff were silent. The first had already regained his expression of satiety and his delicate elegance. He walked up and down the room, shook his head gracefully, and apparently thought something out. His anger had not yet evaporated, but he tried to look as if he did not notice his enemy…. The doctor stood, with one hand on the edge of the table, and looked at Abógin with deep, somewhat cynical and ugly

contempt—with the eyes of sorrow and misfortune when they see before them satiety and elegance.

When, after a short delay, the doctor took his seat in the calêche, his eyes retained their contemptuous look. It was dark, much darker than an hour before. The red half-moon had fallen below the hill, and the clouds that had guarded it lay in black spots among the stars. A carriage with red lamps rattled along the road, and overtook Kiríloff. It was Abógin, driving away to protest … and make a fool of himself….

And all the way home Kiríloff thought, not of his wife or of dead Andreï, but of Abógin and of the people who lived in the house which he had just left. His thoughts were unjust, heartless, inhuman. He condemned Abógin and his wife, and Paptchinski, and all that class of persons who live in a rosy twilight and smell of perfumes; all the way he hated and despised them to the point of torture; and his mind was full of unshakeable convictions as to the worthlessness of such people.

Time will pass; the sorrow of Kiríloff will pass away also, but this conviction—unjust, unworthy of a human heart—will never pass away, and will remain with the doctor to the day of his death.